ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-5* Issue-10* November- 2020
Innovation The Research Concept

सहयोगी संघवाद

Co-Operative-Federalism

Paper Submission: 15/11/2020, Date of Acceptance: 26/11/2020, Date of Publication: 27/11/2020

के.एच.वासनिक
सह प्राध्यापक,
राजनीति विज्ञान विभाग,
शासकीय विदर्भ ज्ञान विज्ञान संस्था, अमरावती,
महाराष्ट्र, भारत

शितल लक्ष्मण रोकड
अनुसंधानकर्ता,
राजनीति विज्ञान विभाग,
शासकीय विदर्भ ज्ञान विज्ञान संस्था, अमरावती,
महाराष्ट्र, भारत

सारांश

संघात्मक संरचना शासन प्रणाली की अद्‌भूत विधा है। भारत यह राज्यों का एकसंघ (union) है। यह भारत के प्रथम अनुच्छेद मे कहाँ गया है। इससे भारतीय संविधान का आरंभ हुआ है। 'संघराज्य' इस शब्द का जिक्र संविधान में कही भी नही है। किसी भी समय में स्वतंत्र सम्प्रभुत्व रहने वाले राज्यों ने आपस में संधि या करार कर के संघ का निर्माण नही किया गया है। इसलिए संसार में जहाँ भी संघीय व्यवस्था है, उससे अलग अनुभव भारतीय संघीय व्यवस्था में मिलता है। विश्व के अन्य संघीय व्यवस्था जैसी है वैसी भारतीय संघीय व्यवस्था नही है। इसलिए अध्ययनकर्ता निरंतर भ्रम मे दिखाई देते है। साथ ही संघीय व्यवस्था के जगह सहयोगी संघवाद, सादृष्य संघवाद या अर्धसंघीय व्यवस्था कहते है। अन्य संघीय व्यवस्था के तुलना में भारत मे केंद्रीकरण किया गया है। यह कोई भी नकार नही सकता। किन्तु यह भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की आवश्यकता थी। प्रत्येक शासन व्यवस्था यह उस प्रदेश एवं समय के अनिवार्यता से स्थापित होती है। सार्वत्रिक सार्वकालिक, आदर्शात्मक इस तरह की शासन व्यवस्था हो ही नही सकती। यह राजनीतिक विज्ञान का स्थापित सिद्धांत है। इसे भारतीय संघीय व्यवस्था कैसे अपवाद हो सकती है। संविधान निर्माताओं का दृष्टिकोण संघात्मक ढाँचे की स्थापना अवश्य रहा है, किन्तू फिर भी संविधान में एकात्मकता का गुंजन ही सुनाई देता है। यद्यपि डॉ. एस. पी. अय्यर का यह मत है कि भारत मे अधिकांश संघीय केन्द्रीकरण सवैधानिक विधि के ढाँचे के बाहर हुआ है। किन्तू यह भी स्वीकार करना पडेगा कि भारतीय संविधान मे भी एकात्मकता के प्रबल तत्व उपस्थित है। भारत की संघ व्यवस्था को राजनीतिक तत्वो के बदलते परिप्रेक्ष्य में निम्न चार प्रकार से वर्णीत किया जा सकता है। (१) केन्द्रीकृत संघवाद का युग, (२) सहयोगी संघवाद का युग, (३) एकात्मक संघवाद का युग, (४) सौदेबाजीवाली संघ व्यवस्था.

भारत मे सहयोगी संघवाद का प्रतिमान

संघात्मक शासन व्यवस्था मे शासन शक्तियों का विभाजन करके दो स्वतंत्र सरकारों के स्तरों की स्थापना ही नही कि जाती, वरन् दो प्रकार की सरकारो व शासन व्यवस्थाओं को इस प्रकार के सहयोग की व्यवस्था भी कि जाती है जिससे विभक्त क्षेत्रों मे प्रशासन प्रभावशाली ढंग से कुशलतापूर्वक चल सके।अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा तथा भारत की संघीय व्यवस्थाओ के अध्ययन से यह निष्कर्ष स्पष्टतया सामने आता है कि संघात्मक व्यवस्था मे सहयोग का लक्षण निहित है। ए. एच. बिर्च ने भारतीय संघवाद को सहयोगी संघवाद की संज्ञा दी है। इस प्रकार कि व्यवस्था मे केंद्रीय सरकार शक्तिशाली होती है। पर राज्य सरकारे अपने क्षेत्रों मे कमजोर नही होती। वर्तमान मे भारत में अनेक वजह से उपराष्ट्रवादी (सब नॅशनॅलिस्ट) शक्ति एवं अस्मिता दिन ब दिन ताकतवार हो रही है। इसलिए संघीय सरकारो ने उसका स्वागत करके संघीय सरकार के अवधारणा को अधिक से अधिक स्पष्ट आकार देना समय कि माँग है। क्योंकी भारतीय संघीय व्यवस्था का भविष्य उपराष्ट्रवादी सब नॅशनॅलिस्ट एवं अस्मिता की समस्या किस प्रकार से हल की जाएगी इस पर ही निर्भर है। कहना गलत न होगा कि इस संविधान का स्वरूप संघात्मक, एकात्मक और सहकारी संघवाद का है, परंतु इसका असली स्वरूप भारतीय है और इसलिए आज तक जिवंत है।

मुख्य शब्द : संघात्मक, एकात्मक, सहयोग, व्यवस्था, सहयोगी संघवाद,केन्द्रीकरण, मौर्ले मिन्टो, मॉन्टफोर्ड, साइमन कमीषन रिपोर्ट, नेहरू रिपोर्ट, शक्तियों का विभाजन, सार्वभौमिकता, पृथक, प्रषासन, प्रादेषिक सम्मेलन, प्रशासनिक सहमति, सविधान भूमंडलीकरण, सब नॅषनॅलिस्ट

प्रस्तावना

संघात्मक संरचना शासन प्रणाली की अद्भूत विधा है। 'संघ' शब्द का अंग्रेजी रूपांतर फेडरेशन (Federation) लैटिन भाषा के शब्द फोएडस (Feodus) से निकला है। जिसका अर्थ है – सन्धि या समझौता. अत शब्द उत्पत्ति के दृष्टिकोण से समझौते द्वारा निर्मित राज्य को संघ राज्य कहा जाता है।

वर्तमान समय में भारत में भारतीय जनता पार्टी की सत्ता केन्द्र के साथ–साथ लगभग २१ राज्य इकाईया में होने के कारण सहकारी संघराज्य की अवधारणा ने नये रंग रूप मे अपना अवतरण किया है।

भारत यह राज्यों का एक संघ (Union) है। यह भारत के प्रथम अनुच्छेद में कहा गया है। इस से भारतीय संविधान का आरंभ हुआ है। 'संघराज्य' इस शब्द का जिक्र संविधान मे कही भी नही है। किसी भी समय में स्वतंत्र सम्प्रभुत्व रहने वाले राज्यों ने आपस में संधि या करार कर के संघ का निर्माण नही किया गया। इसलिए संसार मे जहाँ भी संघीय व्यवस्था है उससे अलग अनुभव भारतीय संघीय व्यवस्था मे मिलता है।

वास्तविकता यह है कि, भारतीय संघराज्य का अलग भाव उत्क्रांती या अनुष्ठी बातों मे खोजना होगा। विश्व के अन्य संघीय व्यवस्था जैसी है, वैसी भारतीय संघीय व्यवस्था नही है। इसलिए अध्ययनकर्ता निरंतर भ्रम मे दिखाई देते है। साथ ही संघीय व्यवस्था के जगह, सहयोगी संघवाद, सादृष्य संघवाद या अर्धसंघीय व्यवस्था कहते है। अन्य संघीय व्यवस्था के तुलना में भारत में केन्द्रीकरण किया गया है, यह कोई भी नकार नही सकता। किन्तु यह भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की आवश्यकता थी।

प्रत्येक शासन व्यवस्था यह उस प्रदेश एवं समय के अनिवार्यता से स्थापित होती है। सार्वत्रिक, सार्वकालिक, आदर्शात्मक इस तरह की, शासन व्यवस्था हो ही नही सकती। यह राजनीतिक विज्ञान का स्थापित सिद्धांत है। इसे भारतीय संघीय व्यवस्था कैसे अपवाद हो सकती है। इसलिए अन्य राष्ट्रो की संघीय व्यवस्था एवं कालबाह्य हुई संघीय व्यवस्था एवं वैज्ञानिक सिद्धांत के आदर्श भारतीय संघीय व्यवस्था के अध्ययन में असफल होते दिख रही है। और पाश्चात्य संघीय व्यवस्था का आदर्श अपने मन मे रखकर भारतीय संघीय व्यवस्था पर केन्द्रीकरण का (आरोप) लगाना माने संविधान के मूल उद्दिष्टो को नकारना जैसा है।

हमारे संविधान निर्माताओं का लक्ष्य एक विशिष्ट्य संघीय व्यवस्था की स्थापना करना था। भारत में संघ का गठन उस लम्बी ऐतिहासिक प्रक्रियाओं की परिणती है जिसका आरम्भ अंग्रेजी शासनकाल में हुआ था। मोर्ले–मिन्टो सुधार, मॉन्ट फोर्ड सुधार, साइमन कमिशन रिपोर्ट, नेहरू रिपोर्ट तथा १९३५ का ऍक्ट संघीय प्रक्रिया के प्रारम्भिक चरण थे।[१] डॉ. अम्बेडकर ने संविधान निर्मात्री सभा में संविधान के स्वरूप को संघात्मक बताते हुए कहा है की, यह एक संघीय संविधान है... केन्द्र तथा राज्य दोनों का गठन संविधान द्वारा हुआ है और दोनों की शक्ती एवं प्राधिकार का स्त्रोत संविधान है। अपने क्षेत्राधिकार में कोई किसी के अधीन नही है। एक का प्राधिकार दूसरे का पूरक है।[२] संविधान में अत्याधिक केन्द्रीकरण का उत्तर देते हुऐ उन्होने कहा, 'एक गम्भीर शिकायत इस आधार पर की जाती है कि अत्याधिक केन्द्रीकरण के कारण राज्य सिकुडकर नगरपालिकाओं के समान हो गए है। यह स्पष्ट है कि इस दृष्टिकोण मे केवल अतिशयोक्ती है। संघात्मक व्यवस्था का मूल उद्देश यह है की, केन्द्र तथा राज्यों के बीच व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका प्राधिकारों का विभाजन हो जो किसी संसद द्वारा पारित विधि का प्रतिफल न होकर संविधानद्वारा उल्लेखित प्रावधानों का परिणाम हो। यह संविधान इसी उद्देश्य की पूर्ती करता है।[३] (Both the union and the states are created by the constitution, both derive their respective authority from the constitution. The one is not subordinate to the other in its own field, the authority of one is co-ordinate with that of the others.)

"यह समझना कठीन है कि ऐसे संविधान को केन्द्रीय कैसे कहा जा सकता है। यह हो सकता है कि संविधान ने केन्द्र को व्यवस्थापिका और कार्यपालिका के क्षेत्र में अधिक व्यापक क्षेत्राधिकार सौपे हो, जिन्हे अन्य संघात्मक संविधानो मे प्रदान न किया गया। परन्तु ये गुण संघवाद के प्रमुख तत्वो का निरूपण नही करते है। संघवाद का मुख्य गुण संविधान द्वारा केन्द्र और राज्यों के बीच व्यवस्थापिका और कार्यपालिका की शक्तियों के वितरण में निहित होता है। हमारे संविधान मे इसी गुण का निरूपण किया गया है। अत यह कहना असत्य है कि राज्यों को केन्द्र के अधीन रखा गया है।"[४]

संविधान निर्माताओं का दृष्टिकोण संघात्मक ढांचे की स्थापना अवश्य रहा है, किन्तू फिर भी संविधान मे एकात्मकता का गुंजन ही सुनाई देता हे। यद्यपि डॉ. एस. पी. अय्यर का यह मत है कि, "भारत में अधिकांश संघीय केन्द्रीकरण संवैधानिक विधि के ढाँचे के बाहर हुआ है।"[५] किन्तू यह भी स्वीकार करना पडेगा कि भारतीय संविधान में भी एकात्मकता के प्रबल तत्व उपस्थित है।

संघवाद वह तन्त्र है जिसके द्वारा राज्य की सारी शक्तियों का विभाजन दो प्रकार की सरकारो के मध्य हो जाता है। ये दो प्रकार कि सरकार केन्द्रीय और राज्यो की सरकारो के रूप में होती है। संघात्मक सरकार की परिभाषा करते हुए डॉ. फायनर ने कहा है कि, 'यह एक शासन है जिसमें सत्ता और शक्ति का एक भाग स्थानिय क्षेत्रों मे निहित होता है और दूसरा भाग केन्द्रीय संस्था में प्रो. डायसी के अनुसार, "संघात्मक राज्य एक ऐसी राजनीतिक रचना है जिसमें राष्ट्रीय एकता और शक्ति तथा प्रदेशों के अधिकारों की रक्षा करते हुए दोनो मे सामंजस्य स्थापित किया जाता है।"[६]

आगे गार्नर ने कहाँ है की, "ऐसी शासन–प्रणालियों के केन्द्रीय और स्थानिय संगठन एक प्रभुसत्ता के अन्तर्गत स्थिर होते है और ये दोनो प्रकार अपने निश्चित अधिकार क्षेत्र की सीमाओं में जो सामान्य संविधान द्वारा निर्धारित की गई है, सर्वोपरि होते है।"[७]

वस्तुतः संघवाद का सिद्धांत सीमित सरकार के सिद्धांत से संबंधित है। संघवाद राष्ट्रीय सार्वभौमिकता और राज्यों के अधिकारों की पृथक मांगो मे जिस साधन द्वारा समन्वय और स्थापित करता है, वह लिखित संविधान,

जिसके द्वारा सार्वभौमिकता संबंधी शक्तियों का विभाजन केन्द्रीय एवं राज्यों की सरकारो के मध्य किया जाता है। फिर संघवाद का मूल कारण शक्ति के विभाजन का सिद्धांत है। के. सी. व्हीयर ने ठीक ही कहा है कि, "संघीय सिद्धांत से मेरा तात्पर्य शक्ति के विभाजन के तरीके से है, जिससे सामान्य (संघीय) एवं क्षेत्राधिकारी (राज्यों) सरकारे अपने क्षेत्र में समान एवं पृथक होती है।"[८] यद्यपि भारतीय संविधान में 'संघ' शब्द का प्रयोग नही किया गया है। लेकिन उपरोक्त परिभाषाओं के संदर्भ मे यह एक संघ राज्य है। जिसमें भारतीय संविधान में संघात्मक व्यवस्था के सभी प्रमुख लक्षण विद्यमान है।

व्यवहार में भारतीय संघवाद (Indian Federalism in Working)

भारत की राजनीतिक परिस्थितियों के साथ संघवाद के स्वरूप मे भी परिवर्तन आता रहा है। भारत की संघ व्यवस्था को राजनीतिक तत्वो के बदलते परिप्रेक्ष्य में निम्न चार प्रकार से वर्णीत किया जा सकता है। १) केन्द्रीकृत संघवाद का युग, २) सहयोगी संघवाद का युग, ३) एकात्मक संघवाद का युग, ४) सौदेबाजीवाली संघ व्यवस्था।

किन्तु ५८ वे अखिल भारतीय राजनीति विज्ञान परिषद में महत्वाकांक्षा भारत यह मूल थीम है। उसमे सहयोगी संघवाद को चर्चा के लिए रखा गया है। इसलिए मैं यहाँ पर सहयोगी संघवाद पर अपना शोधालेख प्रस्तुत कर रहा हूँ।

The Model of Co-Operative Federalism in India
भारत में सहयोगी संघवाद का प्रतिमान

संघात्मक शासन व्यवस्था मे शासन शक्तियों का विभाजन करके दो स्वतंत्र सरकारो के स्तरों की स्थापना ही नही जाती वरन् दो प्रकार की सरकारों व शासन व्यवस्थाओं से इस प्रकार के सहयोग की व्यवस्था भी की जाती है। जिससे विभक्त क्षेत्रो में प्रशासन प्रभावशाली ढंग से कुशलतापूर्वक चल सके। यह सहयोग आवश्यक भी है, क्योंकी दोनो ही स्तरों की सरकारे एक ही राजनीतिक व्यवस्था से कटिबद्ध होती है। जिससे उनके लक्ष्य भी अन्तत एकसमान ही होते है। इसलिए संघात्मक राजनीतिक व्यवस्था में अनेक पहलू होते है जो विविधता से मुक्त तथा अपनी विविधता को बनाए रखने की, स्वायत्तता के बावजद परस्पर अन्त क्षेत्रीय संबंध व सहयोग (Interregional Relationship) अनिवार्यता कर देते है। इस संदर्भ डॉ. के. सी. व्हीयर ने स्पष्ट रूप से लिखा है की, "अगर हम प्रादेशिक सरकार अपने आप तक ही पूर्णत सीमित रहे तो सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था कई मामलों में इस भिन्न–भिन्न नियम व व्यवस्था के कारण नुकसान उठाएगी और प्रादेशिक सरकारों को एक दुसरे के अनुभवों का लाभ न मिलने के कारण कार्य कुशलता कम हो जाएगी। यही कारण है कि हर संघात्मक व्यवस्था मे अत सहकारी सहयोग की संस्थाओं की या तो संविधान मे ही व्यवस्था की जाती है या इस प्रकार के सहयोग की संस्थाएँ परपरांओ के रूप मे विकसित हो जाती है।"[९]

अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा तथा भारत की संघीय व्यवस्थाओ के अध्ययन से यह निष्कर्ष स्पष्टतया सामने आता है कि संघात्मक व्यवस्था मे सहयोग का लक्षण निहित है। "आस्ट्रेलिया में अन्त प्रादेशिक सम्मेलन (Interprovincial conference), प्रीमीयर कॉन्फ्रेस (Premiers Conference) तथा ऋण परिषद (Loan conference) के वार्षिक सम्मेलन, अमेरिका मे गर्व्हनरो के सम्मेलन (Governor's Conference), कनाडा में डोमिनियम प्रोव्हिन्सियल सम्मेलन (Dominion Provincial Conference) आदि केन्द्रीय व प्रादेशिक सरकारो के आपसी सहयोग के माध्यम है।"[१०]

ए. एच. बिर्च ने भारतीय संघवाद को 'सहयोगी संघवाद' की संज्ञा दी है। इस प्रकार की व्यवस्था मे केन्द्रीय सरकार शक्तिशाली हेती है. पर राज्य सरकार अपने अपने क्षेत्रों में कमजोर नही होती। इस व्यवस्था का प्रमुख लक्षण दोनो प्रकार की सरकारों की एक दुसरे पर निर्भरता है। सहयोगात्मक संघवाद से यह अभिप्राय है कि हमारा संविधान केन्द्र और राज्यो के परस्पर सहयोग पर अधिक बल देता है। संविधान निर्माताओ ने एक ऐसी संघ प्रणाली को जन्म दिया है जिससे केन्द्र राज्यों को उचित निर्देश दे सके और आवश्यकता पडने पर राज्यों के विधानमंडल का मंत्रिमंडल को भी भंग कर सके।

भारत में संघात्मक व्यवस्था सुदृढ पारस्पारिकता, आपसी विचार विनिमय तथा दोनों स्तर की सरकारों मे निरन्तर सम्पर्क की स्थापना का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करती है। भारत में तो संविधान द्वारा ही सहयोग की अनेक संस्थाओं की व्यवस्था की गइ है। जिससे उचित राजनीतिक वातावरण की स्थापना हो और सम्पूर्ण संघीय राजनीतिक व्यवस्थाओं के पोषण के लिए प्राण वायू प्राप्त होती रहे। भारत मे वित्त आयोग, अन्तर्राज्यीय समितीयाँ, क्षेत्रीय परिषदे, योजना आयोग, राष्ट्रीय विकास परिषद, मुख्यमंत्रियों एवं अन्य मंत्रियों के सम्मेलन, इत्यादी ऐसे माध्यम है जो सहयोग की ठोसता के प्रतीक है। इस आधार पर प्रसिद्ध राजनीति विशेषज्ञ प्रो. ग्रेनविल ऑस्टीन ने इन्ही व्यवस्थाओं के कारण भारतीय संघ को 'सहयोगी संघवाद' के नाम से सम्बोधित किया है। आगे ऑस्टीन कहते है की, "साधारण और प्रादेशिक सरकारो के बीच प्रशासकीय सहमति का व्यवहार प्रादेशिक सरकारों का साधारण सरकार से प्राप्त होने वाली सहाय्यता पर आनुषंगिक रूप से निर्भर रहने और यह तथ्य की साधारण सरकार सशर्त अनुदान के प्रयोग से उन विषयों में विकास की वृद्धि करती है जो संविधानद्वारा प्रदेशो की समानुविष्ट है।"[११] भारत के संविधान के अधिन संघद्वारा संगृहित करो के आबटन या प्रत्यक्ष अनुदान या योजना निधि के अभिदाय के माध्यम से विद्यमान परिसंघीय सहकारिता प्रणाली परिसंघवाद की संकल्पना के विरूद्ध हो यह आवश्यक नही है। इसलिए ग्रेनविल ऑस्टीन भारतीय परिसंघवाद को सहकारी परिसंघवाद कहते है। जिसमें प्रबल केन्द्रीय सरकारे है। फिर भी हम कहना चाहेंगे की इसका यह परिणाम आवश्यक नही है कि, प्रांतीय सरकारे कमजोर होकर केन्द्रीय राजनीति के प्रशासनिक अभिकरण मात्र ही बन जाए। इन टिप्पनियों के आलोक में यदि पिछले ६५ सालों के वास्तविक कार्यकलापो की समीक्षा करे तो लगता है कि, भूमंडलीकरण, उदारीकरण, नीजिकरण से पहले संघ की बढती हुई शक्ति और राज्यों

की उस पर बढती हुई निर्भरता एवं योजना आयोग का बढता हुआ क्षेत्र जहाँ संविधान की एकात्मक प्रवृत्तियों को मजबूत कर रहा था वही आज स्थिती एकदम अलग है। आज बडे–बडे राष्ट्रीय औद्योगिक घराने एवं बहुराष्ट्रीय कंपनियां राज्यो के आगे थैला खोलकर अपने अपने उद्योग स्थापित करने के लिए लालायित है। राष्ट्रीय राजनैतिक दलो की शक्ति इतनी क्षीण हो गई की वह मनमानी करने की बात का सपना नही देख सकते. (उदाहरण – २०१४ के लोकसभा के बाद काँग्रेस की स्थिती, भारतीय जनता पार्टि का उभरना, क्षेत्रीय दल की स्थिती क्षीण होना) सोचना तो दूर रहा। फिर भी क्षेत्रीय राजनैतिक दलो की संख्या और शक्ति में दिन दूनी रात चौगुणी वृद्धी हुई है जो एकात्मक शक्ति को कमजोर कर रही है और संघात्मक पहलूओं को मजबूती प्रदान कर रही है। न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति एवं न्यायिक सकीयता ने भी संवैधानिक पदो पर आसीन लोगो की मनमानी पर नकेल लगाई है और सूचना के अधिकार ने प्रशासनिक सेवाओं के अफसरो मे भी भय का संचार किया है। ऐसी परिस्थितीयाँ सविधान को संतुलित करती है न कि मनमानी और शक्ति के दूरूपयोग को बढावा देती है।

संवैधानिक विश्लेषण भारतीय सविधान को न तो शुद्ध रूप से संघात्मक करार दे सकता है ओर न ही एकात्मक यह दोनों का ऐसा सम्मिश्रण है जो राष्ट्र के हितो को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान करता है। भारत मे परिस्थितीयों ने अंगडाई ली है और एक बार फिर से आवश्यकता है की, वर्तमान परिस्थितीयों मे इसके आलोचनात्मक विश्लेषण की। "वर्तमान मे भारत में अनेक वजह से उपराष्ट्रवादी (सब नॅशनॅलिस्ट) शक्ति एवं अस्मिता दिन–ब–दिन बलवत्तर, ताकदवर हो रही है। इसलिए संघीय सरकार ने केन्द्र सरकार उसका स्वागत करके संघीय सरकार के अवधारणा को अधिक से अधिक स्पष्टता आकार देना समय की मांग है। उपर से कोई भी लादा न जाए बल्कि भागीदारी प्रवृत्ती से केन्द्र सरकारने अस्मिता से वार्तालाप करके अधिकारो को नये सिरेसे विभाजित करना चाहिए। क्योंकि भारतीय संघीय व्यवस्था का भविष्य उपराष्ट्रवादी (सब नॅशनॅलिस्ट) अस्मिता की समस्या किस प्रकार से हल कि जाएगी इस पर ही निर्भर है।"[१२] कहना गलत न होगा कि इस संविधान का है, परंतु इसका असली स्वरूप भारतीय है और इसलिए आज तक जिवंत है। इस बीच कई राष्ट्रो के न जाने कितने संविधान आए और गए।

निष्कर्ष

1. भारत में संघवाद विभिन्न कालों इसके विभिन्न रूप व्यवहार में देखने को मिलता है।
2. भारत मे एक प्रकार का नही, अनेक प्रकार के संघवाद समय–समय पर प्रतीत होते रहे है।
3. एक ही समय में अलग–अलग राज्यों से केन्द्र से भिन्न–भिन्न प्रकार के संबंध रहे है।
4. कभी इन संबंन्धो का व्याख्या 'सहयोगी संघवाद' के आधार पर तो कभी 'एकात्मक संघवाद' के आधार पर की जा सकती है।
5. वर्तमान में विश्व में संघीय व्यवस्थाओं में सुदृढ केन्द्रीकरण की स्थिती देखने को मिलती है। यदि प्रवृत्ति भारत मे भी दिखाई पडती है।
6. वर्तमान में भारत में अनेक वजह से उपराष्ट्रवादी (उग्रवादी राष्ट्रवाद) (सब नॅशनॅलिस्ट) की शक्ति एवं अस्मिता दिन–ब–दिन ताकतवार हो रही है।
7. इसका निपटारा ही संघीय व्यवस्था की उज्वल भविष्य के लिए आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *जैन पुखराज फडिया बी. एल., भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन – आगरा २०१२, पृ. क्र. १५१.*
2. *अय्यर एस. पी., – एक अधिक पूर्ण संघ के विषय मे विचार, शकधर : संविधान और संसद, १९७६, पृ. क्र. ३२.*
3. *जैन पुखराज फडिय बी. एल., – भारतीय शासन एवं राजनीति,साहित्य भवन – आगरा २०१२, पृ. क्र. १५१.*
4. *डायसी ए. सी., लॉ. ऑफ दि कॉन्स्टीट्युशन – १९३८, पृ. १३८.*
5. *जेन पुखराज फडिया बी. एल., भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन – आगरा २०१२, पृ. क्र. १५२.*
6. *Living Stone - Federation and Constitutional Change – १९६५ P.N. ६–७.*
7. *Prof. Warner W. T. - Federal Status and Their Judiciary Molton and Company, १९६६. P. २५.*
8. *Austin G. - The Indian Constitution Conerstone of a Nation Oxford University Press Delhi, १९७२ – P. २३.*
9. *मुखर्जी निर्मल – फॉर ए मोअर फेडरल इंडिया इकॉनॉमिक ॲड पॉलिटिकल विकली, २७ जून १९९२, पृ. क्र. १३१५.*
10. *Jones Morris - Government and Politics of India] १९७१, P. १५०.*
11. *डॉ. भोळे भा. एल. – भारतीय गणराज्याचे शासन आणि राजकारण, पिंपळापुरे ॲण्ड. क. पब्लिशर्स नागपूर, २००३, पृ. १४६.*